अंक : 4, दिसम्बर 2019

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
दिसम्बर 2019, अंक 4

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
वीणा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

तकनीकी सहयोग
विजय कुमार पाण्डेय

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी०ई०ए०जी०

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

सामूहिक विपणन : मूल्यवर्धन करने की दिशा में एक कदम

नवीन कुमार शुक्ला एवं कमलेश गुरुरानी

उत्तर काशी जिले के किसानों ने खेत स्तर पर एक छोटी सी प्रक्रिया जैसे– ग्रेडिंग एवं छटाई करके अधिक लाभ प्राप्त किया है। साथ ही साथ मूल्यवर्धन के अलावा सामूहिक प्रयास से बाजार में मोल–भाव करने की किसानों की क्षमता का भी विकास किया है।

खेती का नया स्वरूप देना : जलवायु परिवर्तन की एक प्रतिक्रिया

सुरेश कन्ना के.

कृषिगत प्रणालियों में बदलाव करके नवोन्वेषी किसान बदलती जलवायुविक परिस्थितियों में खेती से अनुकूलन बनाने तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सक्षम हो रहे हैं। संस्थागत और नीतिगत स्तर पर उचित सहयोग प्रदान करने वाले कुछ जमीनी स्तर के नवाचारों को उन्नत बनाने की आवश्यकता है।

मशरूम उद्यम : सशक्तता की ओर एक सामूहिक प्रयास

एस. मौर्या, पी.आर. कुमार, आर.एस. पान, ए.के. सिंह,
बिकाश दास एवं बी.पी. भट्ट

यह एक आदिवासी समुदाय के व्यथित जीवन से समृद्ध जीवन में परिवर्तन की कहानी है। अभाव से आर्थिक सशक्तीकरण तक की यात्रा, साथ ही ज्ञान व सशक्तता के रूप में सामूहिक प्रयास से इन आदिवासी महिलाओं ने समृद्धि व सशक्तीकरण की दिशा में अपना मार्ग प्रशस्त किया है।

तकनीक नवाचार से खेती हुई सरल

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह

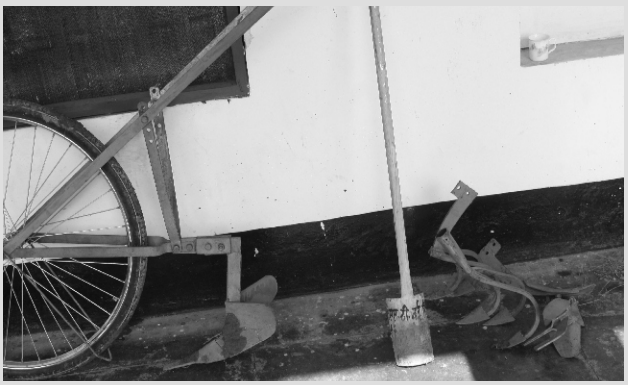

बाढ़ एवं जल–जमाव वाले क्षेत्रों में लघु, सीमान्त एवं महिला किसानों की खेती सम्बन्धित बड़े यंत्रों तक पहुंच मुश्किल है और खेती की लागत भी बढ़ाती है। साथ ही पारम्परिक यंत्रों जैसे कुदाल, खुरपी आदि से खेतों में काम करना श्रमसाध्य एवं समय लगने वाला होता है। ऐसी स्थिति में गोरखपुर एवं पश्चिमी चम्पारण के किसानों ने स्थानीय स्तर पर छोटे–छोटे यंत्रों में नवाचार विकसित कर अपनी खेती को आसान बनाया है।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, दिसम्बर 2019

5 **सामूहिक विपणन : मूल्यवर्धन करने की दिशा में एक कदम**
नवीन कुमार शुक्ला एवं कमलेश गुरूरानी

9 **खेती को नया स्वरूप देना : जलवायु परिवर्तन की एक प्रतिक्रिया**
सुरेश कन्ना के.

11 **मशरूम उद्यम : सशक्तता की ओर एक सामूहिक प्रयास**
एस. मौर्या, पी.आर. कुमार, आस.एस.पान, ए.के. सिंह,
बिकाश दास एवं बी.पी. भट्ट

14 **तकनीक नवाचार से खेती हुई सरल**
अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह

17 **लघु किसानों द्वारा ध्यान देने योग्य सरल नवाचार**
प्रताप मुखोपाध्याय

लघु किसानों द्वारा ध्यान देने योग्य सरल नवाचार

प्रताप मुखोपाध्याय

जलीय खेती को पशु उत्पादन प्रणाली के एक बहुत ही उचित तरीके के तौर पर माना जाता है। उचित पशुपालन अभ्यासों को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों की निरन्तरता बनाये रखते हुए मछली उत्पादन में सुधार किया जा सकता है।

यह अंक...

सम्पादकीय,

लीज़ा इण्डिया हिन्दी का दिसम्बर, 2019 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। खेत की तैयारी से लेकर उत्पाद तैयार होने व विपणन तक प्रत्येक स्तर पर छोटे–मझोले किसानों के समक्ष चुनौतियां ही चुनौतियां हैं। कहीं मौसम की मार से निपटने की चुनौती तो कहीं पर अपने उत्पादों को उचित मूल्य पर बेचने की चुनौती है। इसके साथ ही किसानों के अन्दर अपने उत्पादों के मूल्य संवर्धन हेतु प्रक्रियाओं की जानकारी में भी कमी है। इन सभी स्थितियों से निपटने हेतु लीज़ा इण्डिया में छोटे व सीमान्त किसानों की सफलताएं प्रस्तुत की जाती हैं ताकि बड़े पैमाने पर लोग इन गतिविधियों से लाभ उठा सकें।

पत्रिका का पहला लेख नवीन कुमार शुक्ल व कमलेश गुरूरानी द्वारा लिखित ''सामूहिक विपणन : मूल्यवर्धन करने की दिशा में एक कदम'' है। इस लेख में लेखकद्वय ने उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में किसानों के समक्ष विपणन की समस्याओं तथा उसके लिए ग्राम संघ द्वारा किये जा रहे प्रयासों को बताया है। साथ ही यह भी बताया है कि मूल्यवर्धन की विविध प्रक्रियाओं पर किसानों का क्षमतावर्धन भी किया जा रहा है। पत्रिका के दूसरे लेख ''खेती को नया स्वरूप देना : जलवायु परिवर्तन की एक प्रतिक्रिया'' में लेखक सुरेश कन्ना के. ने एक छोटे किसान बासकरन की कहानी को बताया है। इस लेख में यह दर्शाया गया है कि तमिलनाडु के किसान बासकरन जलवायु परिवर्तन एवं उसके प्रभावों से निपटने हेतु मौसम की अनिश्चितताओं के अनुरूप अपनी खेती में परिवर्तन कर बेहतर लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

एस. मौर्या, पी.आर. कुमार, आर.एस. पान, ए.के. सिंह, बिकाश दास एवं बी.पी. भट्ट द्वारा लिखित पत्रिका के तीसरे लेख ''मशरूम उद्यम : सशक्तता की ओर एक सामूहिक प्रयास'' में लेखकों ने मध्यप्रदेश के दुमका जिले के घने जंगली इलाकों में आदिवासियों की आजीविका को सुनिश्चित करने हेतु कृत्रिम तरीके से मशरूम उगाने को उद्यम के तौर पर स्थापित करने का प्रयास किया है। जबकि चौथा लेख तखतसिंह राजपुरोहित द्वारा लिखित ''मूंगफली में नवाचार ने बढ़ाई आमदनी'' है। इस लेख में लेखक ने एक मझोले किसान मांगीलाल द्वारा मूंगफली की खेती में बीज शोधन, भूमि शोधन आदि क्रियाओं को करते हुए बेहतर लाभ प्राप्त करने की कहानी प्रस्तुत की है।

पत्रिका का अन्तिम और पांचवां लेख ''लघु किसानों द्वारा ध्यान देने योग्य सरल नवाचार'' है, जिसे प्रताप मुखोपाध्याय ने लिखा है। इस लेख के माध्यम से जलीय खेती एवं उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उसके ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं को बताया गया है जिसे अपनाकर किसान अपनी आजीविका सुदृढ़ कर सकता है। मछली पालन तो सामान्य तौर पर होता है, परन्तु इसके अन्दर कुछ नवाचारों को अपनाकर किसानों को लाभान्वित होने की कहानी इस लेख में दर्शायी गयी है।

अन्त में, पिछले अंक के साथ दिये गये सर्वेक्षण प्रपत्र को भरकर भेजने हेतु आप सभी का धन्यवाद। हमेशा की भांति आपके सुझावों की आशा में...

• **सम्पादक मण्डल**

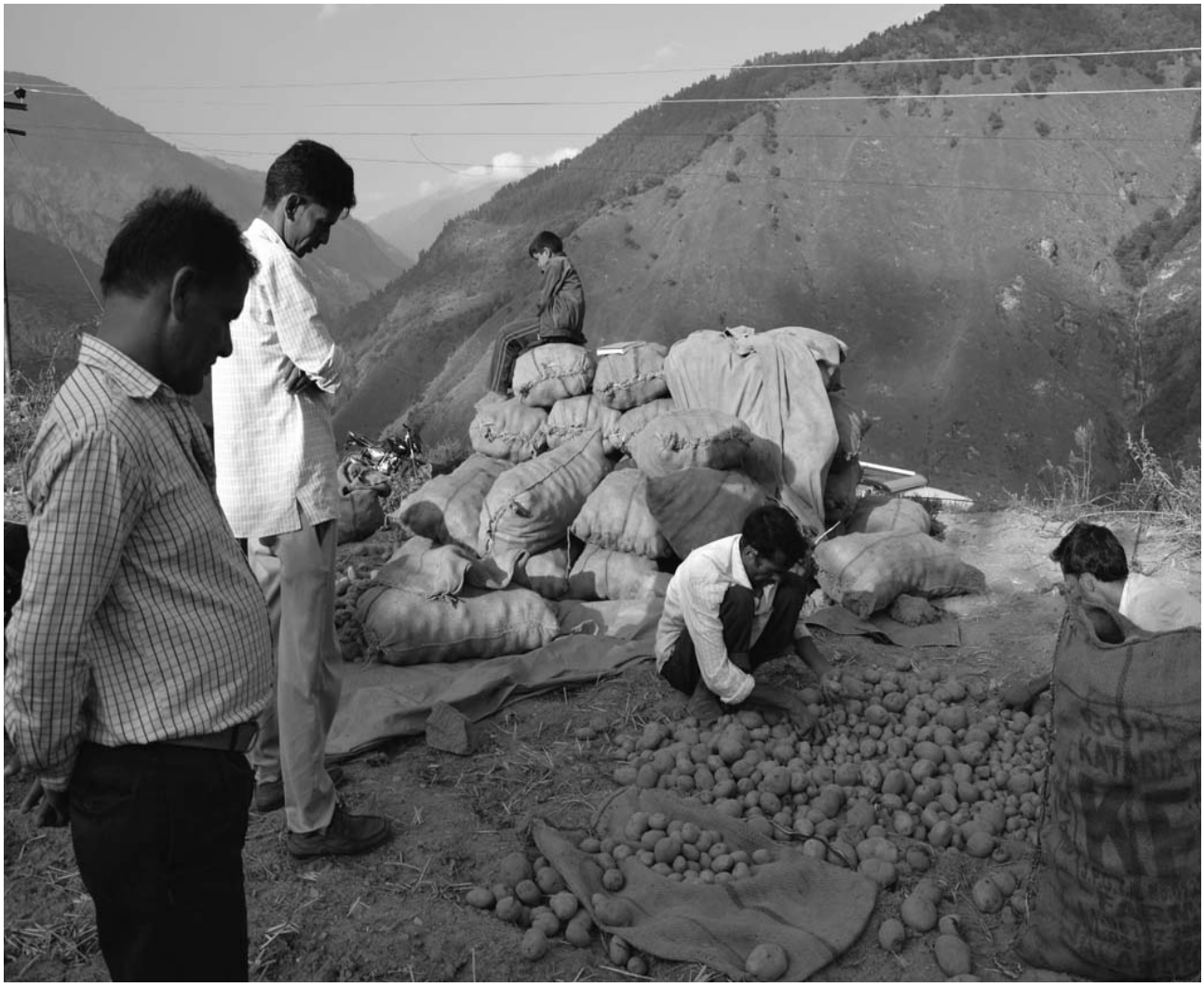

फोटो : रिलायन्स फाउण्डेशन

बेहतर मूल्य प्राप्त करने के लिए आलुओं का श्रेणीकरण करते बन्द्रानी के किसान

सामूहिक विपणन
मूल्यवर्धन करने की दिशा में एक कदम

नवीन कुमार शुक्ला एवं कमलेश गुरुरानी

उत्तरकाशी जिले के किसानों ने खेत स्तर पर एक छोटी सी प्रक्रिया जैसे- ग्रेडिंग एवं छटाई करके अधिक लाभ प्राप्त किया है। साथ ही साथ मूल्यवर्धन के अलावा सामूहिक प्रयास से बाजार में मोल-भाव करने की किसानों की क्षमता का भी विकास किया गया है।

हिमालय क्षेत्र की अधिकांशः ग्रामीण जनसंख्या की आजीविका कृषि आधारित गतिविधियों पर निर्भर रहती है। यहाँ के किसान विशेषकर फसलें जैसे धान, सोयाबीन, बाजरा, आलू, गेहूँ, हरी मटर एवं दालें आदि उगाते हैं। साथ ही उत्तराखण्ड की अपनी एक अनूठी भौगोलिक एवं जलवायुविक महत्व है, जो ऑफ–सीजन (बेमौसम) सब्जियाँ लेने में भी मदद करता है।

उत्तर काशी का भटवाड़ी विकास खण्ड एक इको संवेदनशील क्षेत्र है। जहाँ प्रत्येक वर्ष भारी वर्षा होती है। जून 2013 में भारी वर्षा और फ्लैश बाढ़ ने इस क्षेत्र में ऐसा कहर बरपाया कि यहाँ के लोगों का घर एवं जीवन तबाह हो गया।

ग्राम संघ

ग्राम संघ एक ऐसा संगठन है, जो मजबूत एवं जीवंत समुदाय का प्रबन्धन करने एवं खुद स्वामित्व लेने हेतु तत्पर है। इसे रिलायंस फाउन्डेशन ने आम लोगों का कल्याण करने के लिए समुदाय को संगठित कर बनाया है ताकि सामूहिक स्वामित्व व निर्णय लेने की क्षमता का भी विकास किया जा सके। अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सभी ग्राम संघ एक साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं। ग्राम संघ की सदस्यता उस ग्राम सभा में रहने वाले सभी परिवार ले सकते हैं। ग्राम संघ के सभी सदस्य सदस्यता शुल्क तय करने का निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र हैं और यहाँ प्रत्येक सदस्य निर्णय की प्रक्रिया में भागीदार है। उपलब्ध संसाधनों की सहायता से ग्राम संघ अपनी योजना, तकनीकी सहायता, सामाजिक एवं वित्तीय आदि पहलुओं पर कार्य करता है। साथ ही ग्राम संघ एक संसाधन केन्द्र के रुप में भी कार्य करता है और मौसम की जानकारी, बाजार भाव, बीज, कृषि अभ्यास, सरकारी योजनायें एवं तकनीक आदि की जानकारी तक अपनी पहुँच बनाता है।

गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सन् 2014 में रिलायंस फाउन्डेशन ने उत्तरकाशी जिले में भटवाड़ी क्षेत्र के सबसे अधिक संवेदनशील पांच गाँवों रायथल, नातिन, द्वारी, गोरसाली एवं बन्द्रानी में कृषक समुदायों के साथ काम की शुरुआत की। फाउन्डेशन ने इन गाँवों में किसानों के साथ मिलकर उनको ग्राम संघों के रुप में संगठित करके उन्हें विकास की पहल करने हेतु उत्प्रेरित किया।

पहल

भटवाड़ी विकास खण्ड में आलू और मटर की फसल इस क्षेत्र की प्रमुख नकदी फसल है। जलवायु चुनौतियों के साथ ही किसानों को अपनी उपज का विपणन करने में कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वर्तमान विपणन प्रणाली में ग्राम में बिचौलिए अधिक सक्रिय हैं और किसान अपनी फसल को बिना ग्रेडिंग एवं छटाई के बेच देते हैं। वे ग्रेडिंग एवं छटाई करने से डरते हैं। उनका मानना है कि उनके कम गुणवत्ता वाले उत्पादों को खरीदने हेतु कोई खरीददार नहीं मिलेगा। पहाड़ी इलाका होने के कारण किसानों को अपना उपज बाजार तक

ग्राम विकास कोष

ग्राम संघ सदस्यों द्वारा एकत्र किया गया अंशदान सामान्यतः वित्तीय संसाधनों को जुटाने हेतु एक पुल की तरह कार्य करता है। यह फण्ड़ ग्राम संघ को वित्तीय रुप से आत्मनिर्भर बनाने में मदद करता है। इस फण्ड में ग्राम के विकास के लिए एक बड़ी धनराशि होने से सदस्यों को कार्य करने में सुगमता होती है।

फोटो : रिलायन्स फाउण्डेशन

संगठित विपणन के अभाव में किसानों को आलू के कम दाम मिल रहे हैं

पहुँचाना भी एक बड़ी समस्या होती है। क्योंकि एक तो इन इलाकों में समुचित परिवहन का अभाव होता है, तो दूसरी तरफ किसानों को आस–पास के बाजार जैसे देहरादून, हरिद्वार आदि संगठित बाजार व्यवस्था के बारे में जानकारी नहीं होती है। जिस कारण उन्हें गाँव में बिचौलियों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है और औने–पौने दामों पर अपना उत्पाद बेचना पड़ता है। इस मुद्दे पर रिलायंस फाउन्डेशन ने किसानों की मदद करने का निश्चय किया ताकि किसानों को उनके उत्पादों का उचित लाभ मिले। इस हेतु फाउन्डेशन ने किसानों के साथ योजना बनाकर क्रियान्वयन किया। जिसके अन्तर्गत वर्ष 2016–17 में फाउण्डेशन ने ग्राम संघ के साथ मिलकर जागरुकता, क्षमता विकास, मूल्यवर्धन, बाजार से जुड़ाव

सामूहिक विपणन मात्र समय ही नही बचाता है। वरन् इससे सदस्यों के अन्दर बड़े बाजारों में मोल–भाव करने की क्षमता का भी विकास होता है।

तालिका संख्या 1 ग्रेडिंग उत्पाद से लाभ

ग्राम संघ का नाम	उत्पाद	उत्पाद वाली संख्या	कुल बिक्री (कु0)	मूल्य प्राप्त रू0 / कुन्तल	वृद्धि लाभ मूल्य रू0 / कु0
रामेश्वर देवता ग्राम कृषक समिति बंदरानी	ग्रेडिंग आलू	15	140	1170	140
कन्धार देवता ग्राम कृषक समिति द्वारी	ग्रेडिंग आलू	15	64	580	60
बंगसरिया नाग ग्राम कृषक समिति गोरमाली	ग्रेडिंग मटर	25	20	5520	971

एवं सूचनाओं के ऊपर कार्य किया। इस क्रम में ग्राम संघों को सबसे पहले प्रशिक्षित किया गया और आलू व मटर की बेहतर पैदावार प्राप्त करने हेतु किसानों को गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराने की दृष्टि से ग्राम संघों ने क्लस्टर स्तर पर रायथल, नाति, द्वारी, गोरमाली एवं बन्द्रानी में सामूहिक रुप से बीज का क्रय किया और किसानों को वितरित किया।

ग्राम संघों के सदस्यों ने अपने गाँवों में बिचौलियों को अपने साथ शामिल कर उनके साथ एक सामान्य बैठक की। बैठक के दौरान उनके साथ बाजार की चुनौतियों और उससे निपटने के रास्तों पर चर्चा की गयी। चूंकि अधिकांश बिचौलिये उनके गाँव के ही थे। अतः सभी लोगों ने सहयोग करने व संगठन के साथ कार्य करने हेतु अपनी सहमति दी।

ग्राम संघ ने यह निर्णय लिया कि अब हम लोग सामूहिक रूप से फसल उत्पाद पैदा करेंगे। इसके लिए किसानों ने आलू एवं मटर की सामूहिक खेती एवं संभावित मात्रा में उपज प्राप्त करने के लिए योजना तैयार किया। साथ ही ग्राम संघ ने सामूहिक क्रय करने की दिशा में यह भी निर्णय लिया कि हम अपने उत्पादों को सीधे देहरादून की मण्डियों में बेचेंगे। इस सन्दर्भ में ग्राम संघ के प्रतिनिधि एवं खरीदार तथा विक्रेताओं की एक साथ ग्राम स्तर पर बैठक आयोजित की गयी, जिसमें ग्राम संघ के प्रतिनिधियों ने देहरादून के खरीदारों से सीधे बात–चीत की। यह पहली

मटर तोड़ते हुए रायथल के किसान

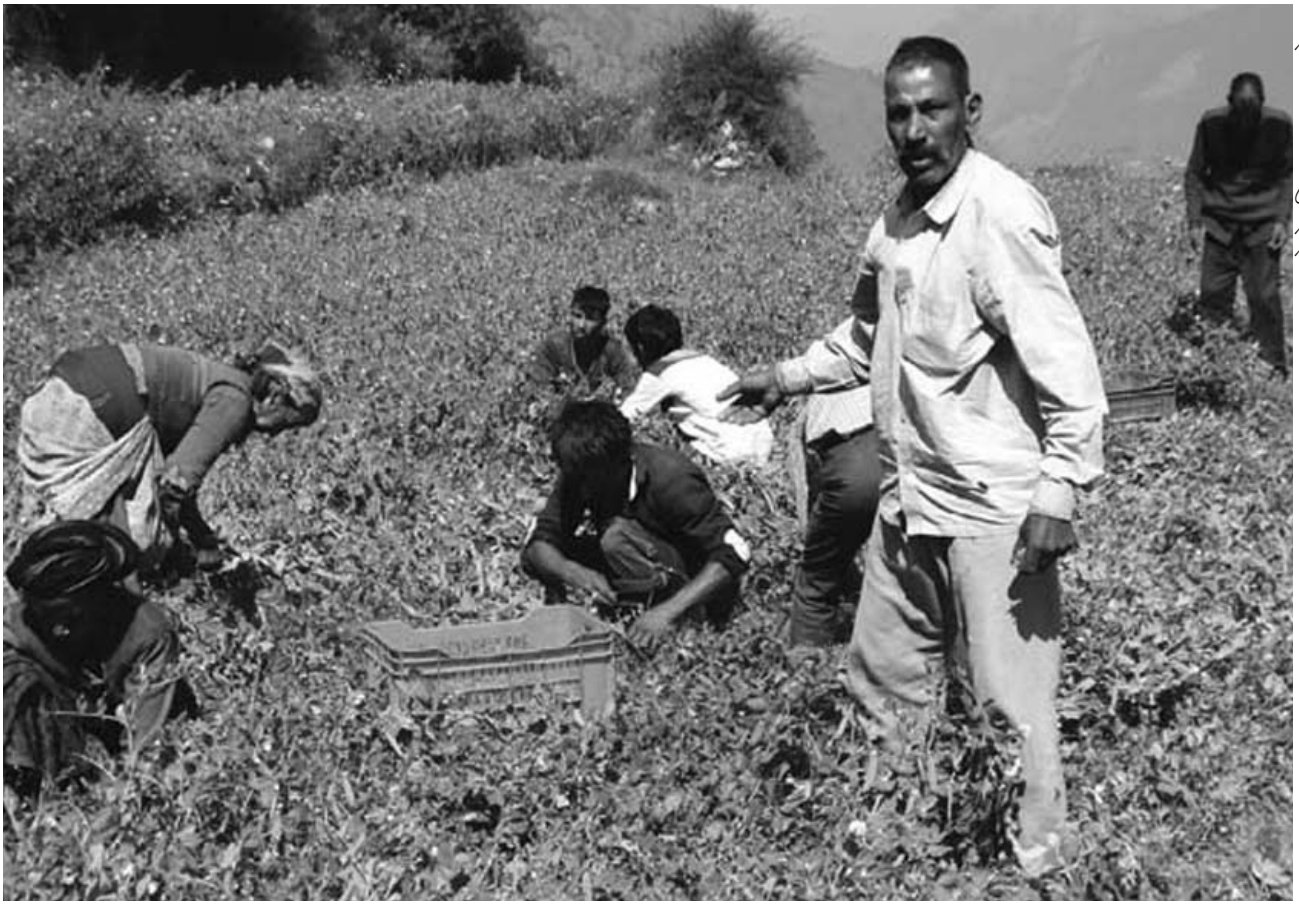

फोटो : रिलायन्स फाउण्डेशन

बार हुआ कि मण्डी के विशेषज्ञों ने ग्राम स्तर पर किसानों को प्रशिक्षण तथा हैण्ड होल्डिंग प्रदान किया, जिससे उत्पादों की कटाई, छंटाई व ग्रेडिंग करने में किसानों को मदद मिली और सामूहिक उपज तथा विपणन के महत्व को किसानों ने समझा।

दो गाँवों में पहली बार उत्पादकों द्वारा आलू की ग्रेडिंग की गयी। ग्राम संघ ने आलू एवं मटर के उत्पादकों को गनी बैग प्रदान किया और ग्राम संघ ने आलू के विपणन के लिए चार गाँवों (नातिन, द्वारी, गोरसाली एवं रायथल) को पैकेजिंग सामग्री प्रदान किया। देहरादून के बाजार से कुल 9600 गनी बैग की खरीदारी करके किसान सदस्यों को वितरित किया गया।

फोटो : रिलायन्स फाउण्डेशन

कलस्टर स्तर पर मटर की सामूहिक तुड़ाई

पहले किसान 50 किग्रा0 प्रति बोरा के वजन के हिसाब से बिना तौल किये बिक्री करते थे। परन्तु अब ग्राम संघ द्वारा वजन मशीन लगा दी गयी है, जिससे किसान प्रति 50 किग्रा0 बोरे का तौल करके वास्तविक वजन के अनुसार बिक्री करते हैं।

आलू एवं मटर की बिक्री हेतु ग्राम संघ द्वारा तीन प्रतियों में चालान बुक बनायी जाती है। एक प्रति किसान को दी जाती है, जिसमें उपज के बारे में विस्तार में लिखा होता है तथा दूसरी कापी बोरे के साथ नत्थी कर दी जाती है और अन्तिम प्रति ग्राम संघ के पास सुरक्षित रखी जाती है। ग्राम संघ के सदस्य ग्राम से मण्डी तक ले जाने के लिए परिवहन बुक करते हैं उसका शुल्क उत्पादकों को देना होता है। मण्डी में उपज पहुँचने के बाद सभी बोरे खोल दिये जाते हैं और उसकी बोली लगती है। बेची गयी मात्रा तथा कीमत (सारिणी संख्या 1 2019) में दर्शाया गया है।

सभी लेन–देन ग्राम विकास फण्ड के माध्यम से किया जाता है, जो पूर्ण रुप से ग्राम संघों द्वारा संचालित एवं प्रबन्धित किया जाता है। जितना पैसा प्राप्त होता वह धनराशि ग्राम संघ के खाता में जमा किया जाता है। ग्राम संघ बाद में गाँव में बैठक आयोजित करता है जिसमें किसानों के उत्पाद के वजन के अनुसार उसकी कीमत में से परिवहन शुल्क को घटा कर किसानों को शेष धनराशि वितरित की जाती है।

इस कार्य में ग्राम संघ ने कुल रू0 129600.00 निवेश किया, जिसमें पैकेजिंग सामग्री आदि शामिल है। इस पहल से ग्राम संघ को रू0 24,000.00 की कमाई हुई और कुल रुपया 38,400.00 बचाया गया। ग्राम संघ देहरादून के 3 थोक विक्रेताओं के नियमित सम्पर्क में रहते है, ताकि मण्डी का भाव पता चलता रहे और बाजार से जुड़ाव बना रहे। इस पहल से किसानों का केवल समय ही नहीं बचता है, वरन् बाजार में मोल–भाव करने की उनकी क्षमता में भी वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष

ग्रेडिंग और छंटाई जैसे मूल्य वर्धक अभ्यासों को अपनाकर बाजार से उचित जुड़ाव विकसित किया गया। उत्पादकों, ग्राम संघ सदस्यों, मालवाहकों, व्यापारियों एवं किसानों का एकीकरण करते हुए सामूहिक विपणन के माध्यम से उत्पादों का सामूहिकरण किया गया। इस पहल से उत्पादकों की मूल्यवर्धन, सामूहिक विपणन, मोल–भाव करने की बेहतर क्षमता, आगे की योजना बनाने और प्रबन्धन करने पर क्षमता निर्माण करने में आसानी हुई। हालांकि यह एक छोटा कदम है, फिर भी उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में बाजार की गतिशीलता में बदलाव लाने में इससे मदद मिलेगी।

■

नवीन कुमार शुक्ला और **कमलेश गुरुरानी**
रिलायन्स फाउन्डेशन
जिला – उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड)
पिनकोड= 249193
ई–मेल : naveen.shukla12@gmail.com

Agroecological Value Chain
LEISA INDIA, Vol. 20, No.1, March 2018

खेती का नया स्वरूप देना
जलवायु परिवर्तन की एक प्रतिक्रिया

सुरेश कन्ना के.

कृषिगत प्रणालियों में बदलाव करके नवोन्वेषी किसान बदलती जलवायुविक परिस्थितियों में खेती से अनुकूलन बनाने तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सक्षम हो रहे हैं। संस्थागत और नीतिगत स्तर पर उचित सहयोग प्रदान करने वाले कुछ ऐसे ही जमीनी स्तर के नवाचारों को उन्नत बनाने की आवश्यकता है।

बासकरन एक प्रमुख जैविक किसान हैं, जो तमिलनाडु में कुम्बकोनम के निकट थेनाम्पडुगई गाँव के रहने वाले हैं। तमिलनाडु में जैविक खेती के पुरोधा डॉ0 नाम्मलवर से बेहद प्रभावित बासकरन पिछले 15 वर्षों से जैविक खेती कर रहे हैं। वह वर्ष 2006 में अधिरंगम में प्रारम्भ हुए नेल थिरूवविज़ा (धान उत्सव) में भी नियमित रूप से प्रतिभागिता करते आ रहे हैं। जैविक खेती और धान की पारम्परिक प्रजातियों की खेती करने के अतिरिक्त वह जलवायु और खेती में आ रहे बदलावों की सघन निगरानी और विश्लेषण करते हुए अपने खेत में बहुत से शोध भी करते रहते हैं। अपने खेत पर शोध करते हुए उन्होंने डेल्टा क्षेत्र के साथ ही तमिलनाडु के अन्य भागों के किसानों के लिए जलवायु अनुकूलित खेती के बहुत से व्यवहारिक समाधान भी तलाशे हैं।

अनिश्चित मौसम पद्धति

20 वर्षों पहले, बहुत अच्छी वर्षा होती थी और क्षेत्र के तालाब और झील वर्ष में लगभग 10 महीनों तक पानी से भरे रहते थे। इससे साल में दो फसलों की खेती सुनिश्चित रहती थी। वर्ष में लगभग तीन माह तक वर्षा होती थी। लेकिन अब, नदियों में बमुश्किल एक माह ही पानी दिखता है। सभी जल संसाधन सूख गये हैं। अब वही किसान खेती कर पाते हैं, जिनके पास बोरवेल और विद्युत पम्प की सुविधा है। अधिकांश जमीनें परती छूट जाती हैं।

वर्षा पद्धति का विश्लेषण करते हुए बासकरन ने पाया कि वर्ष 1991 से लेकर 1995 तक बरसात के मौसम में नियमित वर्षा होती थी, जिससे किसानों को दोनों ऋतुओं में खेती करने में सहायता मिलती थी। वर्ष 2000 में, वर्षा में धीरे–धीरे कमी आती गयी, जिससे किसान केवल एक फसल लेने पर विवश हो गये। वर्ष 2000–2004 की अवधि में वर्षा में भीषण कमी आयी, जिससे भयंकर सूखा की स्थितियां बनीं। लेकिन वर्ष 2005 में, प्रचुर मात्रा में बारिश होने के कारण बाढ़ जैसी स्थितियां बन गयीं। इसके बाद, वर्षा में बहुत उतार–चढ़ाव आया। वर्ष 2010 तक कभी ज्यादा बारिश हुई तो कभी कम बारिश हुई। पुनः 2012 और 2013 भयंकर सूखा वाले वर्ष रहे।

अपने विश्लेषण के आधार पर उन्होंने पाया कि प्रत्येक पांच साल सूखा पड़ने के बाद एक वर्ष अधिक बारिश वाला रहा है। इसके तुरन्त बाद वाले वर्ष में 10 दिन से भी कम वर्षा होने के कारण पुनः भयंकर सूखा पड़ा। इस अनिश्चित वर्षा पद्धति और जलवायु अन्तरों के कारण किसान खेती में किसी विशिष्ट रणनीति को अपनाने में सक्षम नहीं हो पा रहे थे। किसान एक विशिष्ट वर्ष में वर्षा स्थितियों के बारे में निश्चित नहीं हो पाने के कारण किसी भी प्रकार की फसल योजना नहीं बना पा रहे थे। यहाँ तक कि मौसम सम्बन्धी जानकारियां भी गलत सिद्ध हो रही थीं। हालांकि किसान अपने खेती के अनुभवों का उपयोग करते हुए वर्षा पद्धतियों से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे और उसी के अनुसार अपनी रणनीति भी तय कर रहे थे।

जलवायु अनुकूलित माध्यम

बासकरन ने धान की खेती में अपने अनुभवों तथा मौसम में बदलावों को देखते हुए अपनी स्वयं की जलवायु

थनाल टीम को जलवायु अनुकूलित गतिविधियों के बारे में बताते बासकरन

अनुकूलित माध्यम को विकसित किया। वर्ष 2012 के दौरान, जब किसान भयंकर सूखा का अनुभव कर रहे थे और यह नहीं समझ पा रहे थे कि क्या करें। उस दौरान बासकरन ने 140 दिन की धान की प्रजाति वेल्लाइपूनी का चयन कर धान की सीधी बुवाई करने का निश्चय किया। सितम्बर में हुई एक वर्षा से खेत में पर्याप्त नमी हो गयी तब इन्होंने खेत की जुताई कर बीज की बुवाई कर दी। बीज के अंकुरण के लिए पर्याप्त नमी थी। अक्टूबर में दीपावली के बाद दूसरी बारिश हो जाने पर धान के पौधों को एक सीमा तक बढ़ने के लिए पर्याप्त पानी हो गया था। बासकरन ने अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर में 10 दिनों के लिए नदी से भी पानी लिया। जनवरी में, धान की पौध कटाई के लिए तैयार थी। बासकरन ने पाया कि सूखा और नमी के इस सिद्धान्त ने अच्छी तरह कार्य किया। इस प्रकार, 140 दिनों की यह फसल 10 दिन नमी और 20 दिन सूखा रखने से बहुत अच्छी हुई। सूखा के बाद गीला और गीला के बाद सूखा रखने से फसल की अच्छी वृद्धि हुई और जनवरी माह में अच्छी उपज प्राप्त हुई। यद्यपि यह फसल सीधी बुवाई पद्धति से ली गयी, इसलिए इसमें कल्ले भी बहुत मजबूत थे और बहुत कम पुआल के साथ पूर्णतया पके हुए दाने थे। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि कम पानी में भी धान की अच्छी फसल ली जा सकती है।

वर्ष 2016 में, जब धान की खेती के लिए उपयुक्त परिस्थितियां नहीं थीं, उस समय बासकरन ने चावल की दो पारम्परिक प्रजातियों – करूणकुरवई एवं सोर्नमाजुरी की खेती की। उन्होंने जून के महीने में इस प्रजाति की सीधी बुवाई की। उनका अनुमान था कि आगे के महीनों में बारिश होगी। लेकिन कोई बारिश नहीं हुई। सोर्नमाजुरी प्रजाति के बीज अच्छी तरह उगे लेकिन बाद में बारिश न होने के कारण वे सूख गये। लेकिन करूणकुरवई प्रजाति का जमाव भी बेहतर था और सूखा अवधि में भी वह बच गया, जिससे यह सिद्ध हुआ कि कुछ सिंचाई स्रोतों के साथ करूणकुरवई एक उपयुक्त प्रजाति है।

दूसरे ऋतु में अर्थात् सितम्बर और अक्टूबर में नदी में कुछ पानी था। मानसूनी बारिश का पूर्वानुमान कर कुछ किसानों ने धान की सीधी बुवाई के साथ–साथ रोपाई भी कर दी। लेकिन मध्य दिसम्बर तक कोई बारिश न होने के कारण धान की फसल नहीं बच सकी। केवल कुछ किसान जिन्होंने गहरी बोरिंग कराई थी, वही कुछ फसल ले सके। शेष किसानों को बहुत नुकसान हुआ और उस वर्ष उन्हें कोई आमदनी नहीं हुई। लेकिन बासकरन ने कम पानी चाहने वाली फसल लगाने का निश्चय किया और दिसम्बर व जनवरी की प्राकृतिक नमी का उपयोग करते हुए अच्छी फसल ली। उन्होंने एडीटी–3 प्रजाति के काला चना, देशी प्रजाति का हरा चना और टीएमवी–3 प्रजाति की तिल का चयन किया। इन्होंने वर्ष 2016 में 20 दिसम्बर को छिंटकवा विधि से बीजों की बुवाई कर दी। उसी दौरान बिना मौसम के दो बार अच्छी बारिश भी हो गयी, पहली 27–28 दिसम्बर को और दूसरी 20–21 जनवरी को। थोड़ी मात्रा में खाद और कीटनाशकों का उपयोग कर बिना किसी सिचांई के अच्छी फसल हुई। सभी फसलों की कटाई वर्ष 2017 में 25 मार्च को हुई। उन्होंने दो एकड़ खेत से 250 किग्रा0 तिल की उपज तथा ढाई एकड़ खेत से 1100 किग्रा0 काला चना की उपज प्राप्त की। इसके साथ ही एक एकड़ खेत से 350 किग्रा0 हरा चना की उपज भी प्राप्त की।

जिस समय अन्य किसान बिना मौसम का मिजाज पहचाने धान की हाईब्रिड/संकर प्रजाति के बीजों को लगाकर पूर्णतया नुकसान में जा रहे हैं, उस समय बासकरन जलवायु की बदलती परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बहु फसलों को लगाकर अच्छी उपज प्राप्त कर रहे हैं।

सीख के बिन्दु

यहाँ प्रत्येक जलवायुविक परिस्थितियों के लिए, विशिष्ट पारम्परिक प्रजाति के बीज उपलब्ध हैं। पारम्परिक प्रजाति के बीज स्थानीय स्थितियों के अनुसार होते हैं और अच्छी उपज देते हैं। इससे किसानों को विभिन्न जलवायुविक विसंगतियों से निपटने में सहायता मिलती है। यदि किसानों को ऋतु अनुसार उपयुक्त प्रजातियों की जानकारी है तो वे उसी के अनुसार खेती करते हुए अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं।

किसानों को लगातार दो–तीन ऋतुओं तक सिर्फ धान की खेती करने से बचना चाहिए। जब साम्बा ऋतु में धान की खेती हो जाये तो उसके अपशिष्टों से होने वाली नमी का उपयोग दलहन की खेती में करना चाहिए। इसलिए उन्हें मध्य जनवरी में केवल दलहन की खेती करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार अप्रैल–मई के महीने में जबकि मृदा की ऊपरी सतह काफी सूखी होती है, उस समय मोटे अनाजों जैसे – रागी, बाजरा आदि की खेती करनी चाहिए। इस तरीके को अपना कर किसान अपनी फसल प्रणाली को इस प्रकार नियोजित कर सकते हैं, जिससे वे जलवायु स्थितियों का सामना करते हुए अधिकतम लाभ कमा सकते हैं। बासकरन के अनुभव इसका बेहतर उदाहरण हैं।

श्री बासकरन से सम्पर्क करने हेतु निम्न पते पर सम्पर्क किया जा सकता है– ग्राम– तेयनामपदुगई, वाया पटेश्वरम, कुम्बकोणम, तमिलनाडु – 612703, सम्पर्क नं0 – 94428–71049

■

सुरेश कन्ना के
कुडुम्बम
नं० 113/118, सुन्दराज नगर,
सुब्रमण्यपुरम, त्रिची- 620 020, तमिलनाडु भारत
ई-मेल :sureshkanna_kudumbam@yahoo.in

Climate Change and Ecological Approaches
LEISA INDIA, Vol. 19, No.2, June 2017

मशरूम उद्यम
सशक्तता की ओर एक सामूहिक प्रयास

एस. मौर्या, पी.आर. कुमार, आर.एस. पान, ए.के. सिंह, बिकाश दास एवं बी.पी. भट्ट

यह एक आदिवासी समुदाय के व्यथित जीवन से समृद्ध जीवन में परिवर्तन की कहानी है। अभाव से आर्थिक सशक्तीकरण तक की यात्रा, साथ ही ज्ञान व सशक्तता के रुप में सामूहिक प्रयास से इन आदिवासी महिलाओं ने समृद्धि व सशक्तीकरण की दिशा में अपना मार्ग प्रशस्त किया है।

जनपद दुमका के जामा व दुमका विकासखण्ड के दूरस्थ व घने जंगलों में रहने वाले आठ गाँवों के आदिवासी समुदाय के लोग अपनी आजीविका एवं भरण–पोषण हेतु खेती व आयजनक गतिविधियों पर निर्भर रहे हैं। तराई के शुष्क क्षेत्रों में भोजन के रुप में मुख्यतः चावल होने के कारण धान की खेती ही आजीविका का मुख्य स्रोत है तथा यहाँ के लोग पीसे हुए चावल से हरेनिया शराब (स्थानीय दारु) भी बनाते हैं। यहाँ के लोग धान व सब्जियों की फसलों के साथ प्राकृतिक रुप से सहफसली, दलहन फसलें जैसे चना, काला चना, लाल चना, मटर एवं तिलहनी फसलों जैसे– तिल, सरसों, नाईजिर आदि की खेती करते थे। पारम्परिक रुप से मिश्रित फसलें परिवार के पोषण की सुरक्षा सुनिश्चित करती थीं। सब्ज़ियों की बिक्री, महुआ के फूलों का एकत्रीकरण व विपणन और जंगलों से लाख इकठ्ठा करके बाजार में बिक्री कर किसान आय अर्जन करते थे। साथ ही तेंदु (पलाश) व महुआ के पत्तों से प्लेट बनाकर उनको बाजार में बेचना उनकी मुख्य आर्थिक गतिविधि थी।

स्थानीय समुदाय केवल स्थानीय पारम्परिक धान की प्रजाति की खेती करते थे और स्थानीय देशी प्रजाति के कद्दू, नेनुआ, तरोई, लौकी उगाते थे। वास्तव में, यह क्षेत्र प्रसार एजेन्सी से अछूता रहा है और स्थानीय आदिवासी किसान पारम्परिक व सदियों पुरानी कृषि तकनीकों व गतिविधियों को अपनाते हुए खेती–बाड़ी करते रहे हैं। 2009–10 में राष्ट्रीय कृषि नवाचार परियोजना के माध्यम से स्थानीय आदिवासी समुदाय के उत्थान एवं आजीविका की बेहतरी हेतु कृषि गतिविधियों के माध्यम से एक कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।

समुदाय द्वारा मशरूम का सामूहिक उत्पादन एवं विपणन

सर्वप्रथम किसानों को ग्राम सभा के माध्यम से बुलाया गया था। यह देखा गया कि किसानों को नर्सरी तैयार करने का कोई अनुभव नहीं था। वे सीधे तौर पर पहाड़ियों पर रोपाई करके स्थानीय प्रजाति उगाते थे। ऐसा करने से पौधे अत्यधिक वर्षा, शुष्क अन्तराल व जाड़ों में गलन से प्रभावित होते थे। साथ ही इस प्रकार की खेती एक निश्चित मौसम तक ही सीमित होती थी। वे सभी आफ सीजन फसल व नर्सरी से भी अनजान थे।

अतः इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य था कि प्रत्येक गाँव में एक सामुदायिक नर्सरी उगाई जाए। उस गाँव के आस–पास के गाँवों के किसानों ने नर्सरी उगाने पर आयोजित प्रशिक्षण में भाग लिया। सामुदायिक नर्सरी की स्थापना ने सामूहिक कृषि की अवधारणा को पहले प्रशिक्षण में ही स्थापित किया। साथ ही नर्सरी को लगाने व व्यवस्थित प्रक्रिया के तहत् किसान अपने खेतों में पौधो की रोपाई करके लाभान्वित हुए। नई विधि/तकनीक को सीख कर किसान ऑफ सीजन (बेमौसम) की सब्जी को उगाने में सक्षम हुए अर्थात् ऑफ सीजन (बेमौसम) सब्जी उत्पादन की तकनीक सीख लिए।

धान के बाद समुदायों ने खुले मौसम में व ऑफ सीजन में लो टनल पॉली हाउस में प्लास्टिक ट्रे में टमाटर, बैगन, मिर्च व खीरे की पौध तैयार करना सीख लिया। उन्होंने आस–पास के क्षेत्रों में पौधों की बिक्री की। यह उनका

बाक्स : 1 मशरूम का सामूहिक उत्पादन

ओएस्टर मशरूम का उत्पादन 9 महिलाओं के दल द्वारा किया गया है। जिनका नेतृत्व सगबेहरी गांव की नीलमुनि सोरेन ने किया है। मशरूम का उत्पादन लगभग 500 वर्गफीट आकार के झोपड़ी / अस्थाई मकान में किया गया।

प्रथम बैच की शुरूआत मार्च के प्रथम सप्ताह में हुई और सितम्बर तक लगातार 20 दिनों के अन्तराल पर अन्य बैच में मशरूम उत्पादन किया गया। प्रत्येक बैच 40 दिन के अन्तराल पर मशरूम कटाई हेतु तैयार हो जाते थे। 600 बैग में से प्रत्येक 10 बैगों में मशरूम उगाया गया। प्रत्येक बैग में लगभग 400 किग्रा0 मशरूम प्राप्त होता था। इस प्रकार 1900.00 रू0 प्रति किग्रा0 की दर से प्रत्येक बैच में कुल रू0 63000.00 रूपये प्राप्त हुए। प्रति बैच में 600 बैग की खेती की लागत रू0 25500.00 रू0 की लागत आती है, जिसमें इनपुट के अतिरिक्त मकान का किराया, सदस्यों का अधिरोपित मूल्य, श्रम, बिजली का बिल आदि शामिल हैं। इस प्रकार रू0 37500.00 की शुद्ध आय हो रही है। एक सामूहिक उद्यम के रूप में प्रत्येक सदस्य रू0 4167.00 कमाता है। इसमें से 40 प्रतिशत समूह में बचत करता है। अर्थात् समूह के बचत में 40 प्रतिशत बचाता है। नीलमुनि सोरेन को अब स्थानीय प्रशिक्षक के रूप में जाना जाता है। जो संथाली भाषा में दूसरों को प्रशिक्षित करती हैं। इस प्रशिक्षण के माध्यम से वे अलग से रू0 4000.00 प्रतिमाह कमाती हैं।

पहला व्यवसायिक उद्यम था। यद्यपि यह छोटा व्यवसायिक उद्यम था, लेकिन उनके लिए यह एक उत्साहजनक अनुभव रहा। इस प्रकार आय की वृद्धि ने समुदाय को आगे के उद्यम हेतु उत्साहित व प्रेरित किया।

मशरूम उत्पादन

स्थानीय आदिवासी समुदाय को जंगलों में पाये जाने वाले जंगली / प्राकृतिक मशरूमों के बारे में काफी जानकारी है। ये लोग मशरूम को जंगलों से इकठ्ठा करते थे, और स्वयं भी खाते थे तथा नजदीक के साप्ताहिक बाजार, गुहिया जोरी, दुमका, वाडपलानी व करेला बाजार में रु0 80 से रु0 100 प्रति किग्रा0 तक बेचते थे जिससे उन्हें अच्छी आय हो जाती थी। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मशरूम की व्यवसायिक खेती करने के ऊपर विचार किया गया। हालांकि मशरूम की खेती का विचार उन सभी के लिए नया था, फिर भी उन्होंने इसे करने में रूचि दिखाई और राष्ट्रीय कृषि नवाचार परियोजना (NAIP) के सहयोग से उत्साहपूर्वक मशरूम उगाने का तरीका सीखा व अपने घरों पर इसका पहला अभ्यास किया। पहले बैच को आसानी से अपने विकास खण्ड व नगर दुमका, गुहियाजोरी व जामलाग में मशरूम के लिए बाजार उपलब्ध हो गया। बाजार में मशरूम रु0 120 से रु0 140 प्रति किग्रा0 तक बाजार में बिक रहा था, जिससे लोगों को अच्छी आय हुई। इस प्रकार पहले अनुभव ने ही लोगों का उत्साह बढ़ाया और किसानों ने मशरूम की खेती बड़े पैमाने पर करने की इच्छा व्यक्त की। परिणामस्वरुप मशरूम की खेती पर 700–800 महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रत्येक गाँव में पूरे दिन दिया गया।

प्रशिक्षण के बाद इसी वर्ष (2009–2010) लगभग 100–200 महिलाओं ने मशरूम की खेती शुरु कर दी, परन्तु एक सीजन के बाद अर्थात् मशरूम की एक फसल लेने के बाद केवल 50 महिलाओं ने मशरूम उत्पादन जारी रखा। भूमिहीन व सीमान्त जोत वाले अधिकांश किसानों ने मशरूम उत्पादन के लिए आवश्यक लागत न लगा पाने के कारण मशरूम उत्पादन बन्द कर दिया। सामान्यतः ये परिवार धान की खेती के बाद मजदूरी वास्ते पलायन करते थे। लगभग 20–25 परिवारों को गाँव में ही रहने के लिए राजी किया गया तथा परियोजना के अन्तर्गत मशरूम उत्पादन हेतु आवश्यक सामग्री व जानकारी उपलब्ध कराई गई।

आरम्भ में महिलाओं ने व्यक्तिगत रुप से मशरूम का उत्पादन किया और व्यक्तिगत रुप से विपणन भी किया अर्थात् वे अकेले–अकेले बाजार में जाकर मशरूम बेचती थीं। एक–दो उत्पादन चक्र के पश्चात् लोग मशरूम उत्पादन तो व्यक्तिगत रुप से करते रहे, लेकिन उत्पाद का विपणन सामूहिक रुप से किया।

सामूहिक पहल की ओर अग्रसर

सन् 2011 से उन्होंने संयुक्त रुप से अपने संसाधनों का उपयोग करते हुए कम खर्च में बड़े स्तर पर मशरूम उत्पादन का निर्णय लिया। सभी लोगों ने यह अनुभव किया कि सामूहिक रुप से कार्य करने में उत्पादन खर्चों को कम किया जा सकता है। उदाहरण स्वरुप मशरूम सब्सट्रेक्ट की तैयारी में, स्थान प्राप्त करने में, यार्ड के रख–रखाव हेतु तथा बिक्री हेतु मशरूम को बाजार में ले जाने तथा बिक्री व्यवस्था हेतु उपकरण व श्रम को एकत्रित करके परिचालन लागत को कम किया जा सकता है। ऐसे मामलों में सभी किसानों को ग्रोथ चेम्बर बनाने की आवश्यकता के बजाय समूह के सभी सदस्यों के उपयोग हेतु कामन / सामान्य यार्ड (सार्वजनिक यार्ड), पर्याप्त था। सामान्य यार्ड में सामूहिक रुप से कार्य करने में स्थान, पूंजी और श्रम की बचत हुई।

> मशरूम उत्पादन घरेलू पोषण सुरक्षा में वृद्धि, लाभकारी रोजगार व आय तथा पलायन को रोकने का एक उद्यम है।

छोटे (4–5 सदस्य) एवं बड़े समूहों (16–20) को गठित करके प्रायः प्रत्येक गाँव में एक से अधिक समुदायों ने मशरूम का सामूहिक उत्पादन एवं विपणन किया। राष्ट्रीय कृषि नवाचार परियोजना के सहयोग से पहला स्वयं सहायता समूह बनाया गया था। तत्पश्चात् सामूहिक गतिविधियों हेतु कई स्वयं सहायता समूह गठित किए गए। प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रुप से अलग–अलग गतिविधियों हेतु जिम्मेदार था। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध धान के पुआल से सब्सट्रैक्ट तैयार करना, उत्पादन एवं विपणन व्यवस्था, समूह के प्रबन्धन आदि विषयों पर सदस्यों को प्रशिक्षित किया गया। इस परियोजना में स्पान (बीज), फार्मेल्डीआइड एवं कार्बेन्डाजिम (सब्सट्रैक्ट को जीवाणुमुक्त करने हेतु), मास्टर ट्रे, प्लास्टिक की रस्सियां, पालीप्रोपाइलीन, मशरूम बनाने हेतु थैला/बैग जैसी सामग्री की नियमित आपूर्ति की गई। आवश्यकता होने पर कैल्शियम कार्बोनेट की भी आपूर्ति की गई। चूंकि ये सभी गतिविधियां फूस व मिट्टी (झोपड़ी) के घरों में चल रही थीं। इसलिए छतों को ढंकने के लिए उनको पालीथीन शीट भी प्रदान की गई।

पांच सदस्यों के समूह ने ओपस्टर व दूधिया मशरुम का औसत उत्पादन 40 किग्रा0 किया। भागीदार प्रत्येक परिवार ने 20–25 प्रतिशत मशरूम का स्वयं उपयोग कर शेष को बाजार में बेच दिया। प्रत्येक सदस्य द्वारा घरेलू उपयोग का विवरण एक कापी में दर्ज किया जाता था जिसे मासिक लाभांश में कम कर घटा दिया जाता था। विश्लेषण करने पर स्पष्ट हुआ कि मशरूम की औसत वार्षिक घरेलू खपत 16 किग्रा से बढ़कर 36 किग्रा0 हो गई। इससे पहले समुदाय जंगल से मशरूम एकत्र करके उपयोग करते थे, जो मानसून के मौसम में ही मिलता था, परन्तु अब वे लम्बे समय तक मशरूम का उपयोग करने में सक्षम है।

व्यक्तिगत रूप से किसान विपणन हेतु स्थानीय बाजार तक ही पहुँच सकते हैं, जहाँ पर बाजार भाव 100 से 120 रूपये प्रति किग्रा0 तक रहता है। साथ ही व्यक्तिगत रूप से बिक्री करने से कंटेनर, परिवहन, पारिवारिक श्रम आदि खर्चे लागत मूल्य को बढ़ाते भी हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए और दुमका, जामताड़ा व साहबगंज जैसे जनपदस्तरीय बाजारों में मशरूम का बाजार भाव अधिक मिलने के कारण विपणन का कार्य सामूहिक तौर पर करने का निश्चय किया गया। इसके तहत् उत्पाद को इकट्ठा करके दुमका, जामताड़ा व साहबगंज में जनपदस्तरीय बाजार में रू0 140 से 160 रूपये प्रति किलोग्राम की दर से बिक्री कर वर्ष 2010–11 में समूहों ने एक तरफ 1,40,000 रूपये की आय प्राप्त की तो दूसरी तरफ लागत मूल्य में भी 80 प्रतिशत की कमी दर्ज की। लाभांश को स्वयं सहायता समूहों के खाते में जमा करके इसका उपयोग रिवाल्विंग फण्ड के रूप में किया जाता है। वे आवश्यकतानुसार कुछ धनराशि सदस्यों को ऋण हेतु भी देते हैं। वर्तमान में समूह स्पान के 100 पैकेट क्रय करता है जो एक माह में मशरूम के 300 पैकेट तैयार करने हेतु पर्याप्त होता है। मशरूम का बाजार भाव बढ़ने से समूह अच्छी आय प्राप्त कर रहे हैं। औसतन प्रति समूह को प्रति माह 30,000 रूपये की आय हो रही है।

स्थाई उद्यम के रूप में मशरूम उत्पादन

मशरूम उत्पादन एक स्थाई उद्यम के रूप में घरेलू पोषण सुरक्षा, आयजनक रोजगार, अच्छी आय के साथ–साथ पलायन को भी रोकने का अच्छा माध्यम/साधन है। सामूहिक उत्पादन और विपणन के साथ आदिवासी समुदाय कई लाभों का अनुभव कर सकते हैं।

राष्ट्रीय कृषि नवाचार परियोजना ने इन महिला किसानों को प्रेरित करने, अच्छे मशरूम उत्पादक किसानों के यहां भ्रमण, प्रदर्शन व प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन किसानों को जब भी मशरूम से सम्बन्धित कोई समस्या आई, तो उसका निदान करने में भी सक्रिय योगदान दिया। 2011 में राष्ट्रीय कृषि नवाचार परियोजना के बंद होने के बाद 2014–15 तक समुदाय का क्षमतावर्धन आदि कार्य किया गया। 2016–17 तक कुछ इनपुट का भी सहयोग किया गया। वर्तमान में समुदाय मशरूम उत्पादन में पूरी तरह से आत्मनिर्भर हैं।

अच्छा लाभ अर्जन करने के साथ–साथ समूह के सदस्यों ने अपने कार्य के वातावरण को भी बदल दिया है। उन्होंने अपने बुनियादी ढांचों को एकीकृत किया है। मशरूम उगाने हेतु सबस्ट्रैक्ट, पैंकिंग, शेड एवं भण्डारण सुविधाओं का नवीनीकरण किया है अर्थात् मशरूम उत्पादन सम्बन्धी सुविधाओं में इजाफा किया है। मशरूम की बिक्री द्वारा अर्जित लाभ से समूहों ने धान के पुआल को काटने के लिए चारा काटने वाली मशीन खरीदी है। आज उनके पास दस गाँवों में दस चारा काटने वाली मशीन है। व्यक्तिगत उत्पादन से लेकर अपने घर में मशरूम उगाने व स्थानीय बाजार में बेचने तक की क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए समुदाय औपचारिक स्वयं सहायता समूहों में विकसित हुए है। कंक्रीट छतों वाले बेहतर आवास, टेलीविजन की सुविधा से युक्त घर उनकी बढती हुई समृद्धि के कुछ उदाहरण हैं।

■

प्रिया रंजन कुमार
प्रमुख वैज्ञानिक
आई.सी.ए.आर.–आर.सी.ई.आर. रिसर्च सेन्टर
पोस्ट : रजोउलाटू प्लाण्डू, रांची– 834010
झारखण्ड
ई–मेल : ourprk@gmail.com

Small Holder Farm Enterprises
LEISA INDIA, Vol. 20, No.3, Sept. 2018

तकनीक नवाचार से खेती हुई सरल

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह

बाढ़ एवं जल–जमाव वाले क्षेत्रों में लघु, सीमान्त एवं महिला किसानों की खेती सम्बन्धित बड़े यंत्रों तक पहुँच मुश्किल है और खेती की लागत भी बढ़ाती है। साथ ही पारम्परिक यंत्रों जैसे कुदाल, खुरपी आदि से खेतों में काम करना श्रमसाध्य एवं समय लगने वाला होता है। ऐसी स्थिति में गोरखपुर एवं पश्चिमी चम्पारण के किसानों ने स्थानीय स्तर पर छोटे–छोटे यंत्रों में नवाचार विकसित कर अपनी खेती को आसान बनाया है।

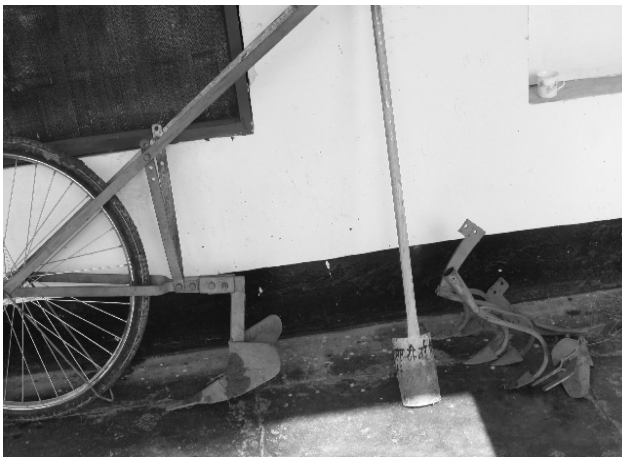

स्थानीय स्तर पर विकसित छोटे कृषि यंत्र

पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे बाढ़ एवं जल–जमाव ग्रस्त क्षेत्रों में छोटे एवं मझोले किसानों की संख्या 80 प्रतिशत है। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत खेती एवं खेती आधारित मजदूरी है। इसके साथ ही इनके पास खेती सम्बन्धित संसाधनों की संख्या भी न्यून होती है। ऐसी स्थिति में ये अपने कार्यों के लिए स्वयं के श्रम पर आधारित रहते हैं और खेती के विभिन्न कार्य काफी श्रमसाध्य एवं अधिक समय लेने वाले होते हैं। जैसे– धान की रोपनी, खर–पतवार निकालना, गुड़ाई, मिट्टी चढ़ाना आदि कार्यों में काफी समय व श्रम लगता है और चूँकि उपरोक्त सभी कार्य अधिकांशतः महिलाएं ही करती हैं। अतः उनके स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपद गोरखपुर के कैम्पियरगंज एवं जंगल कौड़िया विकास खण्ड तथा पश्चिमी चम्पारण जिले, बिहार के नौतन प्रखण्ड के बाढ़ग्रस्त गाँवों में किये गये एक अध्ययन के मुताबिक बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में पानी एवं कीचड़ में पांच–छह घण्टे तक झुककर रोपनी करने से महिलाओं को विशेषकर कमर एवं पैरों में दर्द की परेशानी रहती है तथा पानी में रहने से अनेक जल–जनित बीमारियों का भी सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार घण्टों बैठे रहकर खुरपी से निराई–गुड़ाई करने से हथेलियों, उंगलियों एवं कन्धों में दर्द रहता है। ये तो कुछ उदाहरण हैं। ऐसे बहुत से कार्य हैं, जिनको करने में काफी समय लगता है।

बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में अधिकांशतः किसान बहुस्तरीय खेती बड़े पैमाने पर करते हैं जिसके लिए उन्हें बांस अथवा लकड़ी के पोल गाड़ने की आवश्यकता होती है। पोल गाड़ने हेतु गड्ढा करने में सबसे अधिक समय व श्रम लगता है और खेत की तैयारी में लागत भी अधिक लग जाती है।

इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए इन दोनों क्षेत्रों के किसानों द्वारा स्थानीय स्तर पर कुछ कृषि यंत्रों का विकास किया गया है जिनके उपयोग से न सिर्फ मेहनत और समय कम लगता है वरन् इसका उपयोग महिलाएं भी आसानी से कर सकती हैं। साथ ही स्थानीय स्तर पर निर्मित होने से इनकी मरम्मत भी आसान होती है।

स्थानीय स्तर पर विकसित यंत्र

खेती किसानी में लगने वाले समय एवं श्रम को कम करने के उद्देश्य से निम्न यंत्रों का विकास किया गया–

- **लाइन खींचने वाला यंत्र** : फसलों जैसे मक्का, आलू, गोभी, मूंगफली आदि की लाइन से बुवाई करने हेतु निश्चित दूरी पर लाइन खींचना एक समय लगने वाला कार्य है, पहले किसान या तो कुदाल से लाइन खींचते थे या फिर किसी लकड़ी से जो सिर्फ उनके अनुभव पर आधारित होता था। इससे निपटने हेतु स्थानीय स्तर पर लकड़ी अथवा लोहे का तीनफारा अथवा पचफारा यंत्र तैयार किया गया, जिससे बिना किसी अतिरिक्त श्रम या समय के एक ही बार में तीन अथवा पाँच लाइनें खींची जा सकती हैं।
- **गढ्ढा करने वाला यंत्र :** बहुस्तरीय खेती करने हेतु बांस अथवा लकड़ी का पीलर गाड़ने के लिए गढ्ढा खोदने की आवश्यकता होती है। सामान्यतया कुदाल

> साइकिल निराई–गुड़ाई यंत्र से एक एकड़ खेत की गुड़ाई दो से ढाई घण्टे में आसानी से हो जाती है जबकि उसी खेत की गुड़ाई हाथ से करने पर 3–4 दिन लगते हैं।

साईकिल निराई–गुड़ाई यंत्र से गुड़ाई करती महिला

बाक्स : 1 संतोष के अनुभव

जिला पश्चिमी चम्पारण, बिहार के प्रखण्ड नौतम में स्थित गांव जमुनिया के श्री संतोष कुमार ने साईकिल निराई गुड़ाई यंत्र के उपर अपने अनुभवों को बताते हुए कहा कि ''सामान्यतः एक एकड़ खेत की निराई–गुड़ाई के लिए 3–4 व्यक्ति और पूरा एक दिन लगता है। परन्तु स्थानीय स्तर पर तैयार इस यंत्र से एक एकड़ खेत की निराई– गुड़ाई एक व्यक्ति मात्र 2–2.5 घण्टे में कर लेगा। साथ ही यदि 15 दिन के अन्तराल पर इस यंत्र का उपयोग दो बार कर दिया जाये तो खर–पतवार खेत में ही सूख जायेगा।''

अथवा सब्बल से गढ्ढा खोदना काफी श्रमसाध्य और समय लगने वाला होता है। आंकड़ों के अनुसार प्रति एकड़ 658 गड्ढे खोदे जाते हैं जिसमें 10–12 दिन लग जाता है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए नीचे से आधा गोल आकार का लोहे का एक यंत्र तैयार किया गया। इस यंत्र से आसानी से न केवल 2 मिनट में एक गढ्ढा खुद जायेगा, वरन् अन्दर से मिट्टी भी बाहर आ जायेगी।

- **निराई–गुड़ाई यंत्र :** किसी भी फसल में सोहनी अर्थात् खर–पतवार निकालना एक प्रमुख कार्य होता है। इस कार्य में काफी समय व मेहनत लगती है। इस हेतु कई फाल वाले यंत्र की तरह का ही एक यंत्र तैयार किया गया है, जो आसानी से खर–पतवार निकालता चलता है। इसी प्रकार इसी यंत्र से जिन फसलों पर मिट्टी चढ़ाना होता है, उस पर मिट्टी भी चढ़ जाती है।

यंत्रों में नवाचार

स्थानीय स्तर पर विकसित इन यंत्रों को थोड़े से नवाचार से और अधिक उपयोगी व आसान बनाया गया है। लाइन खींचने वाले यंत्र को नट–बोल्ट के सहारे फिक्स कर देने से एक तरफ तो फसल की मांग के अनुसार उसे आसानी से खिसकाया जा सकता है, तो दूसरी तरफ फाल का नुकीला भाग खराब होने पर उसे आसानी से बदला जा सकता है। इस यंत्र से पंक्ति से पंक्ति एवं पौधों से पौधों की दूरी को वैज्ञानिक तरीके से ध्यान में रखते हुए लाईन तैयार करते हैं।

महिलाएं भी आसानी से इन यंत्रों को चला सकें, इसके लिए निराई–गुड़ाई यंत्र को साइकिल के एक पहिये के सहारे फिक्स कर दिया गया है और आगे नट–बोल्ट पर कसे होने के कारण यह यंत्र आसानी से बदला जा सकता है। इसके साथ ही इसमें कई तरह के यंत्र विकसित किये गये हैं जो पौधों की दूरी के हिसाब से छोटे–बड़े किये जा सकते हैं और जिन्हें साइकिल पहिये में बदल–बदल कर लगाया जा सकता है। इसी में से एक छोटा हल है जिसका उपयोग कर महिलाएं अपनी छोटी जोत को आसानी से जोत सकती हैं।

नवाचार के बाद इन यंत्रों की कार्य क्षमता बढ़ गई है और अब ये उन्नत यंत्र पारम्परिक यंत्रों की अपेक्षा 10 गुना

पचफारा से लाईन खिंचती महिला

बाक्स 2 : साइकिल हल से गृहवाटिका हुई आसान

राखूखोर (चिकनी टोला), जंगल कौड़िया, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश की 67 वर्षीय महिला किसान श्रीमती कोईला देवी अपने घर के पीछे छोटी सी गृहवाटिका में लतादार एवं अन्य सब्ज़ियां उगाकर उपयोग करती हैं। पहले वे कुदाल व खुरपी से खेत को तैयार करती थीं। डी0एस0टी0 कोर सपोर्ट परियोजना के तहत् राखूखोर में स्थित कृषि सेवा केन्द्र पर जब उन्होंने साइकिल हल को देखा और बैठक के दौरान उसके उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की, तब से वे अपने गृहवाटिका में खेत को तैयार करने के लिए इसी साइकिल हल का प्रयोग करती हैं। उनका कहना है कि अब हमारे लिए सब्ज़ियों की खेती करना आसान हो गया है, क्योंकि इस साइकिल हल को हम भी आसानी से चला लेते हैं। इसमें मेहनत नहीं लगती।

अधिक काम कम समय में करते हैं। इन यंत्रों का उपयोग बिना झुके व बिना बैठे किया जा सकता है जिससे न सिर्फ खेती आसान हुई वरन् खेती की लागत भी कम हुई।

निष्कर्ष

खेती में सहयोगी इन यंत्रों ने खेती को सरल बनाया है। महिलाएं भी अब आसानी से व समय पर खेती सम्बन्धी कार्यों को कर पा रही हैं। कृषि सेवा केन्द्रों के माध्यम से इन यंत्रों का प्रचार–प्रसार बड़े पैमाने पर हो रहा है। स्थानीय स्तर पर तैयार यंत्रों की इस श्रृंखला का अन्त यही नहीं है, वरन् इन यंत्रों के उपयोग से होने वाले लाभों को देखते हुए बड़ी संख्या में किसान इस तरह के नवाचारों हेतु उत्सुक व उत्साही हो रहे हैं।

■

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर
ई–मेल : pacs@geagindia.org

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2002-2018

V.4, No. 1, 2002- Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V. 18, No. 1, 2016- Co-creation to knowledge
V. 18, No. 2, 2016- Valuing underutilised crops
V. 18, No. 3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V. 18, No. 4, 2016- Stakeholders in agroecology

V. 19, No. 1, 2017- Food Sovereignty
V. 19, No. 2, 2017- Climate Change and Ecological appraches
V. 19, No. 3, 2017- Ecological Livestock
V. 19, No. 4, 2017- Millet Farming Systems

V. 20, No. 1, 2018- Agroecological Value Chains
V. 20, No. 2, 2018- Biological Crop Management
V. 20, No. 3, 2018- Small Holders Farm Enterprises
V. 20, No. 4, 2018- Agroecological Innovations
Special Issue April 2018- Agroecology- A path towards SDGs

लघु किसानों द्वारा ध्यान देने योग्य सरल नवाचार

प्रताप मुखोपाध्याय

जलीय खेती को पशु उत्पादन प्रणाली के एक बहुत ही उचित तरीके के तौर पर माना जाता है। उचित पशुपालन अभ्यासों को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों की निरन्तरता बनाये रखते हुए मछली उत्पादन में सुधार किया जा सकता है।

जलीय खेती (एक्वाकल्चर) एक उच्च विविधतापूर्ण उत्पादन प्रणाली है। एक्वाकल्चर उत्पादन की विविधता अधिकार क्षेत्र में आने वाली इकाईयों, (तालाबों, पोखरों, रेसवे, पिंजरों, मेड़ों आदि), प्रबन्धन स्तर (व्यापक, अर्ध–सघन, सघन, अति सघन), पालन की प्रकृति (एक ही तरह के जानवर पालन अथवा कई तरह के जानवरों का पालन), लवणता का स्तर (शुद्ध जल, खारा जल, समुद्री जल), जलवायु (ठंडे पानी में जलीय खेती, गुनगुना पानी में जलीय खेती) एवं जल की दिशा (स्थिर जल एवं बहते पानी) के सन्दर्भ में प्रदर्शित होती है। हालांकि सामान्य तौर पर प्राकृतिक तालाबों में जलीय खेती की जाती है लेकिन अन्य उचित उत्पादन प्रणाली जैसे– टैंक कल्चर, पिंजरा कल्चर, रेसवे कल्चर, एकीकृत कल्चर और दूसरे कल्चरों के साथ मेड़ कल्चर भी पूरे विश्व में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है।

साफ जल में जलीय खेती भारत में एक प्रचलित ग्रामीण गतिविधि है। उच्च जैविक मूल्यों के कारण भोजन के तौर पर एवं आजीविका सुधारों में इसके योगदान को देखते हुए इस गतिविधि पर जोर देने की आवश्यकता है। बड़े पैमाने

स्थानीय उपकरणों का उपयोग कर मछलियों के लिए चारा तैयार किया गया

पर उत्पादन करने से जलीय खेती में लगने वाली लागत में कमी आयेगी, जिससे किसानों के लिए यह अधिक लाभप्रद होगा। यह आर्थिक के साथ–साथ पारिस्थितिकी की दृष्टि से भी काफी लाभप्रद है। आज भारत मछली उत्पादन के लिहाज से विश्व में दूसरे स्थान पर है, जिसमें लघु व सीमान्त किसानों का बहुत बड़ा योगदान है।

उत्पादन को प्रभावित करने वाले कुछ मुख्य कारक निम्नवत् हैं –

अ) तालाबों का उचित प्रबन्धन

ब) अच्छी प्रजाति की सही आकार व अनुपात वाली मछलियां

स) स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कृषि आधारित सामग्रियों से तैयार भोजन एवं भोजन देने की सही रणनीति।

निवेश उपयोग के अनुकूलन से विशेष रूप से छोटे पैमाने पर जलीय खेती करने में प्रमुखतया अपेक्षित रूप से उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होती है। इसे सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रबन्धन मानकों के अनुकूलन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। पहले, पुनर्उत्पादन और प्रजनन के नियन्त्रण पर सटीक जानकारी न होने के कारण किसान जलीय खेती हेतु तालाबों में बीज डालने के लिए नदियों से लार्वा एवं बड़ी मछलियों को एकत्र करते थे। ''बाध प्रजनन'' जैसे अभ्यासों में अचानक आने वाली मूसलाधार बारिश के पानी से अण्डे जमीन पर आ जाते थे और आज भी इसी प्राकृतिक तरीके से अण्डों को बाहर लाते हैं। बाद में मछलियों को सुसंगत तरीके से प्रजनन करने हेतु स्पॉन तकनीक प्राप्त होने के बाद, आनुवांशिक चयन प्रक्रियाओं ने विशेष रूप से कार्प जलीय कृषि को गति प्रदान की है, और अब पूरे वर्ष मछलियों के बीज उपलब्ध रहते हैं।

किसानों द्वारा किये जा रहे नवाचार

साधारण उपकरणों का उपयोग कर और किसानों के रचनात्मक विचारों का निरन्तर उपयोग कर मछली पालन प्रक्रिया एवं समस्या समाधान की क्षमता को सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया है और समय की कसौटी पर जांचा भी गया है। पश्चिम बंगाल के कुछ जिलों जैसे– बांकुरा, उत्तरी 24 परगना, दक्षिणी 24 परगना, दक्षिणी दिनाज़पुर, पूर्वी बर्दवान, हुगली, मालदा और पूवी मेदिनीपुर के किसान अपने पारम्परिक ज्ञान और सामान्य देशज नवाचारी उपकरणों का उपयोग कर मछली पालन का कार्य कर रहे हैं। किसानों द्वारा किये जा रहे कुछ नवाचारों को बाक्स 1 में दिखाया गया है और कुछ नवाचारों का विवरण नीचे दिया जा रहा है –

बाक्स 1: अन्य नवाचार

- गर्मी के महीनों में तेज धूप से बचाने हेतु तालाब के ऊपर पाम की पत्तियों से छाया तैयार करना।
- पानी की गुणवत्ता का मापन करना।
- मछलियों को बीमारियों एवं संक्रमण से बचाने हेतु प्रत्येक 15 दिन पर औषधीय तत्वों जैसे नीम की पत्तियां, हल्दी, तुलसी की पत्तियों, लहसुन का मिश्रण एवं नमक के घोल में मिलाकर चारा देना।
- तालाब से निकलने वाले गैसों की नियमित सफाई और संस्तुत मानक के अनुसार पानी की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु नींबू का प्रयोग।

क) जलीय खेती में तालाबों/टैंकों में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा में कमी होना। यदि तालाब/टैंक में घुलित

मछलियों को चारा खिलाने हेतु सामान्य पद्धति का उपयोग किया गया

किसानों द्वारा सरलता से किये जाने वाले व समय के साथ सफलतापूर्वक जांचे–परखे जा चुके इन नवाचारों एवं सुधारों को उचित मान्यता दी जानी चाहिए। ऐसा न हो कि ये अभिनव विचार एवं मनोभाव हमेशा के लिए समाप्त हो जायें।

शेष पृष्ठ 23 पर....

ऑक्सीजन की मात्रा 3.0 मिलीग्राम/प्रति लीटर से कम हो जाती है, तो मछलियों के लिए जिन्दा रहना मुश्किल हो जाता है। बड़ी मछलियों, विशेषकर कार्प प्रजाति की मछलियां सांस लेने के लिए तालाब/टैंक की ऊपरी सतह पर आ जाती हैं। ऐसा सामान्यतः बहुत सुबह होता है और जब चमकदार धूप नहीं होती अथवा बदली वाला मौसम होता है, उस समय भी मछलियां तालाब/टैंक की ऊपरी सतह पर आ जाती हैं। कुछ समस्याएं अण्डों सम्बन्धी भी होती हैं और ऐसी स्थिति में जब तक किसान कृत्रिम आक्सीजन की व्यवस्था करता है, तब तक पूरी मछलियां मर जाती हैं। चूंकि किसानों द्वारा किये जाने वाले मछलीपालन का बीमा नहीं होता और किसान कृत्रिम हवा देने वाली महंगी मशीनों को नहीं खरीद सकते। ऐसी स्थिति में इन किसानों ने एक नवाचार किया और बांस के 3 खम्भों पर एक बांस की टोकरी रखकर उसमें एक 0.5 हार्सपावर का पम्प रख देते हैं जिसका कनेक्शन हौजपाइप से कर देते हैं। कम समय में पानी में आक्सीजन की कमी को पूरा करने के लिए इस उपकरण का उपयोग करते हैं, इससे उनका पैसा और पाली गयी मछलियां दोनों ही बचता है।

ख) पश्चिम बंगाल के गाँवों में रहने वाले संसाधन विहीन बहुत से किसान मछली के थोड़े बड़े बच्चों को पालना पसन्द करते हैं। मछली पालन की यह अवधि मात्र 3 महीने की होती है। एक बार मछली निकालने के अगले दिन ही उसमें दूसरी मछलियों को डाल देते हैं। इस प्रकार किसान एक साल में तीन बार मछलियां निकाल लेते हैं। मछलियों की मांग निरन्तर रहने के कारण किसानों की मछलियां बहुत जल्दी बिक भी जाती हैं। हालांकि कुछ शिकारी पक्षियां जैसे रामचिरैया (किंगफिशर), जलकाग (कारमोरेण्ट) बगुला आदि से मछलियों को बचाए रखना मुश्किल होता है। इस समस्या से निपटने हेतु किसान सामान्य धागों को पूरे तालाब में फैला देते हैं। यह उपाय बहुत प्रभावी और पर्यावरणसम्मत भी है। इससे एक तरफ तो चिड़ियों से मछलियों की रक्षा होती है तो दूसरी तरफ पक्षियों को भी कोई नुकसान नहीं पहुंचता है।

मछलियों पर चिड़ियों के आक्रमण को रोकने हेतु किसानों ने धागे का प्रयोग किया

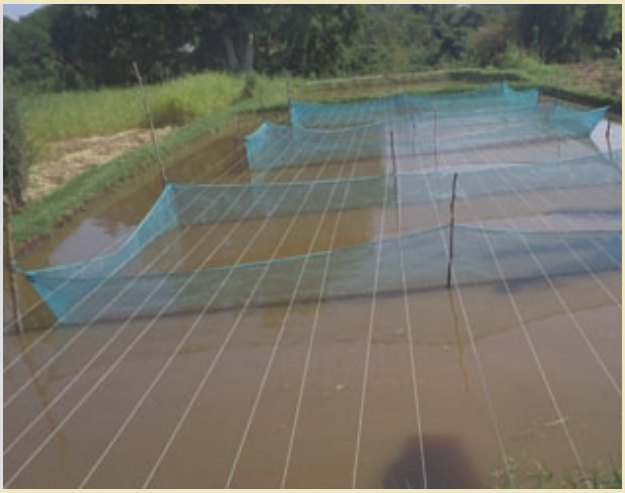

ग) यद्यपि मछलियां या कुछ प्रमुख भारतीय मछलियों की प्रजातियां जैसे– कतला, रोहू, मृगल पूरे भारत में शुद्ध जल में मुख्य तौर पर पाली जाती हैं। इसके साथ ही मांगुर, सिंघी जैसी हवा में सांस लेने वाली छोटी व देशी प्रजाति की मछलियां, मुर्रेल्स जैसे– चन्ना एसपीएस, पर्च जैसे– कोई, फेदर बैक जैसे– फोलुई, ईल्स जैसे– पाकल, छोटी स्थानीय मछलियां जैसे– मोला, टेंगरा, पब्दा खोयरा, वाचा आदि की मांग उपभोक्ता बहुत ज्यादा करते हैं। इसलिए किसान विविध प्रकार की मछलियां पालने को वरीयता देते हैं। तालाब में बांस के पिंजरे लगाने में सक्षम किसान खिलाने अथवा मछली पालन में बिना किसी समस्या का सामना किये विविध प्रकार की मछलियों को पाल लेते हैं।

घ) किसी भी जलीय कृषि प्रणाली में भोजन देना सबसे अधिक खर्चीला होता है। इसलिए ऐसे छोटे किसान, जिनके पास कम निवेश वाली जलीय खेती करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता, वे प्राकृतिक भोज्य जीवाश्मों जैसे– प्राकृतिक जूप्लानकोटेन, पेरीफिटान और इसी प्रकार के अन्य जीवाश्मों पर आधारित मछलियों को पालते हैं। घर पर बनायी गयी जैविक खाद और कभी–कभी खोखले बांस में गन्ने को डालकर तालाब में विभिन्न स्थानों पर जमा देने से पेरीफिटान का बेहतर विकास होता है, जो रोहू के लिए प्रमुख प्राकृतिक भोजन होता है। ये वर्तमान में चल रहे जैविक जलीय खेती का एक हिस्सा भी है।

ड.) पश्चिम बंगाल के अधिकांश गाँवों में छोटे किसान अपने छोटे अथवा मध्यम आकार के तालाबों के लिए मछलियों को खिलाने वाले साधारण उपकरणों का उपयोग करते हैं। उनमें से एक है– तालाबों में बांस के खम्भों के सहारे लटकाये गये नायलान के छिद्रित थैले। इस अभ्यास को अर्ध–सघन मछली पालन में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

च) स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कृषि आधारित उप–उत्पादों का उपयोग करके चाउमिन/स्पेघेटी के रूप में मछली का चारा तैयार किया जाता है। इन्हें स्थानीय स्तर पर बने उपकरणों का उपयोग कर तैयार किया जाता है और धूप में सूखाकर जूट के बैग में भण्डारित कर लिया जाता है। आदिवासी युवा और छोटे किसान इस प्रकार से स्थानीय स्तर पर मछलियों के लिए भोजन तैयार कर स्वयं भी उपयोग करते हैं और उनके लिए यह व्यवसाय का एक विकल्प भी है।

तालाब में आक्सीजन की कमी से निपटने हेतु पारम्परिक माध्यम

छ) साधारणतया किसान बिना किसी खर–पतवारनाशी का उपयोग किये अपने तालाबों से खर–पतवारों की सफाई स्वयं करते हैं। बाद में, किसानों को इपोमिया जैसे स्वादिष्ट पौधों को उगाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। अब अजोला और डकवीड्स को मछलियों के भोजन के लिए उगाया जा रहा है, जो एक जैव उर्वरक भी है। ये सभी अभ्यास मनुष्यों के लिए भोजन तैयार करने में किसानों की मदद करते हैं, जो उत्पादन लागत की तुलना में अत्यधिक पोषक होने के कारण पूरे राज्य में कम खर्चीली, कम निवेश जलीय खेती को विकसित करने हेतु एक मॉडल के तौर पर है।

हालांकि इस बात से इन्कार नहीं किया जाता है कि पाली गयी मछलियों के उत्पादन प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाना महत्वपूर्ण है, फिर भी किसानों द्वारा किये जा रहे नवाचारों में सुधार तथा समय के साथ इन सुधारों के सफलतापूर्वक परीक्षण को भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जाना चाहिए और इन्हें उचित मान्यता दी जानी चाहिए ताकि समय के साथ ये नवाचार व सुधार विलुप्त न हो जायें।

▪

प्रताप मुखोपाध्याय
मुख्य वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त)
आईसीएआर- सीआईएफए-भुवनेश्वर
185, श्रीरामपुर सड़क, कोबासिया विन, ब्लाक-बी-309
गरिया, कोलकाता
ई-मेल : pratap_in2001@yahoo.co.uk

Agroecological Innovations
LEISA INDIA, Vol. 20, No.4, Dec. 2018

बहु प्रजातियों को पालने हेतु बांस का ढांचा लगाना